International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 14 Issue 02, Feb- 2024
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

वैष्णव धर्म की प्रारम्भिक स्थिति : एक अध्ययन

डॉ0 प्रदीप सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग, टी0डी0 पी0जी0 कालेज, जौनपुर

वासुदेव और भागवत धर्म :–

वैष्णव धर्म का प्रारम्भिक रूप भागवत धर्म के अन्तर्गत देवकी पुत्र भगवान वासुदेव कृष्ण के पूजन दर्शित होता है, जो सम्भवतः छठी सदी ईशा पूर्व के पहले स्थापित हो चुका था। वासुदेव, जो कृष्ण का प्रारम्भिक नाम था, पाणिनी के युग में प्रचलित था। उस युग में वासुदेव की उपासना करने वाला 'वासुदेवक' कहे जाते थे।[1] वासुदेव कृष्ण को प्रधान देवता मानकर उसकी उपासना समाज में भक्ति के नये आदर्श के रूप में प्रचलित हुई। मथुरा क्षेत्र में उनकी जाति का प्रभाव था। वे सम्भवतः क्षत्रिय नहीं थे। उनकी जाति को स्यात मथुरा से गुजरात की ओर जाना पड़ा। उस समय उत्तरी भारत में विघटन और संघर्ष से जूझ रहा था। कृष्ण ने अपने मत का संचालन किया।पंतजलि ने अपने भाष्य में लिखा है कि वासुदेव 'पूजाहं' (तत्रभवतः) अर्थात् भगवान की संज्ञा है, जो दिव्य पुरूष है। वे शायद वृष्णि–बंशी रहे। पतंजलि के अनुसार वासुदेव विष्णु के रूप थे। तत्कालीन समाज में कंस और वासुदेव सम्बन्धी आख्यान प्रचलित हो चुके थे।[2] उस युग में कंस वध के चित्र बनाए जाते थे तथा वासुदेव कृष्ण का यशगान किया जाता था। वासुदेव (जनार्दन) के चतुर्व्यूह का उल्लेख पतंजलि द्वारा किया गया है।[3] कृष्ण और संर्कषण की सम्मिलित सेना तथा उनके प्रसाद और मंदिरों का विवरण मिलता है।[4] पाणिनी के कालसे वासुदेव की पूजा और भागवत धर्म का प्रसार तीव्रगति से प्रारम्भ हो चुका था। गृहपति और गृहपत्नी, जो भागवत धर्म का अनुसरण करते थे, 'भागवती' और 'भागवतम्' कहे जाते थे।[5] वासुदेव के उपासकों के प्रारम्भिक अभिलेख भी मिलते हैं। बेसनगर स्थित द्वितीय ई०पू० के एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि यूनानी दूत तक्षशिला निवासी हेलियोडोरस ने देवाधिदेव वासुदेव के स्मरण में गरूड़ध्वज स्थापित कराया था और अपने को भागवत घोषित किया था।[6]भागवत धर्म का समाज में इतना अधिक प्रभाव था कि कभी– कभी विदेशी भी उसके अनुयायी हो गये थे और आराध्य देव के सम्मान और स्मरण में अभिलेख उत्कीर्ण कराते थे। प्रथम शताब्दी ईशा पूर्व के नानाघाट अभिलेख में संर्कषण (वासुदेव) कृष्ण के भाई बलराम और वासुदेव का उल्लेख हुआ है, जो तद्युगीन वासुदेवपूजन के प्रचलन और वासुदेव धर्म के प्रसार की पुष्टि होती है।[7]महाभारत में वासुदेव का अनेक बार उल्लेख मिलता है। वासुदेव के सम्बन्ध में भीष्म का कथन है कि 'इस नित्य, मंगलमय, अद्भूत और अनुरागी देवता को वासुदेव रूप में समझना चाहिए। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भक्ति–संवलित कार्यों से उनकी पूजा करते हैं।' वृष्णि लोग वासुदेव के अनुवायी थे, जो कालान्तर में 'सात्वत' भी कहलाए।[8] भगवान वासुदेव ने स्वयं कहा है कि 'मैं वृष्णियों में वासुदेव हूँ, पाण्डयों में धनंजय हूँ, मुनियों में व्यास ह् तथा कवियों में उशाना हूँ।'[9] सात्वत् लोग वासुदेव को परम ब्रह्म के रूप में मानकर विशिष्ट साधना द्वारापूजते थे।[10] भागवत पुराण के कथन के अनुसार सभी जीवों में स्थित भगवान को अपने हृदय में दर्शित करना चाहिए और सब के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए। ऐसा करने वाला व्यक्ति ही सच्चा भक्त है। इस

vflLVsaV izksQslj] izkphu bfrgkl] iqjkrRo ,oa laLÑfr foHkkx] Vh0Mh0 ih0th0 dkyst] tkSuiqj

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 14 Issue 02, Feb- 2024
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

प्रकार के व्यक्ति में आदर्श भावना, श्रद्धा, विनय दोष दृष्टि का अभाव, मित्रता भाव, शांत विचार, सत्यता और शुद्धता होती है। वह सम्पति और विपत्ति को समान मानता है तथा उत्तम, मध्यम और अधम को समभाव से समझना चाहिए। ऐसा भागवत अनुयायी काम और अर्थ से बहुत दूर रहता है। वह मन में ऐसी प्रवृत्ति नहीं लाता। इस प्रकार की प्रवृत्ति रखने वाले व्यक्ति का पुरूषार्थ नष्ट हो जाता है। इसके साथ मन, इन्द्रिय, शरीर, धर्म, बुद्धि, श्री, स्मृति, सत्य आदि भी लुप्त हो जाते हैं। वह लोकोपकारो तथा निस्पृह मार्ग का अनुसरण करता है।विष्णु पुराण के अनुसार सात्वत अंश का पुत्र था और कालान्तर में उसके नाम से वंश भी चला और वंश में होने वाले लोग भगवान वासुदेव के अनुयायी हो गये थे।[11] अतः वासुदेव को सात्वतर्षभ भी कहा गया।[12] सात्वत जाति के लोगों ने भागवत सम्प्रदाय का विकास हुआ जो परमेश्वर के रूप में मानता था और सविधि पूजन अर्चन करता था, वासुदेव पूजन मौर्य युग में भी प्रचलित था। मेगस्थनीज नामक यूनानी यात्री ने मथुरा के 'सोर सेनाई' नामक जाति और 'जोबारेस' नामक नदी का उल्लेख किया है, जो क्रमशः सूरसेन और यमुना जैसे शब्दों को व्यक्त करते हैं। ऐसा लगता है कि भागवत धर्म का उदय मौर्य युग की बहुत पहले हो चुका था, जो सम्भवतः बौद्ध युग केपूर्व का समय था, इसके बाद से भागवत धर्म समाज में सक्रियता पूर्वक स्थान बनाने लगा तथा महाभारत की रचना के समय भागवत धर्म एक प्रमुख धर्म बन गया था। परमेश्वर ने वासुदेव के रूप में इस भूतल पर अवतार लेकर लोगों को नवीन आस्था और विश्वास प्रदान किया तथा कहा 'बुद्धिमान व्यक्ति जन्मों के अन्त में यह मानते हुए कि वासुदेव ही सब कुछ है। स्वयं को मुझमें अर्पित करता हुआ मुझे भजता है, ऐसा महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।'[13] अतः वासुदेव भागवत सम्प्रदाय के सर्वोच्च आधार शिव थे, जिनका पूजन परमेश्वर रूप में उनके अनुयायियों द्वारा अत्यन्त निष्ठा पूर्वक किया जाता था, विष्णु पुराण में कहा गया है कि वासुदेव को विष्णु के नाम के रूप में स्वीकार किया गया ह तथा यह कहा गया है कि विष्णु सर्वत्र हैं, जिसमें सभी का वास है, इसलिए वह वासुदेव हैं।[14] एक अन्य स्थल पर वासुदेव के लिए यह विवृत है। 'सम्पूर्ण' संसार रूप महावृक्ष के मूल स्वरूप, भूत, भविष्य और वर्तमान कालीन सम्पूर्ण देवों, असुरों और मुनिजन के बुद्धि के लिए अगम्य तथा ब्रह्म और अग्नि आदि द्वारा प्रमाण करके भू–भार–हरण के लिए प्रसन्न किए गये तथा आदि मध्य और अन्तहीन भगवान वासुदेव ने देवकी के गर्भ से अवतार लिया। उनकी कृपा से महान महिमावाली योगनिद्रा भी नन्द गोप की पत्नी यशोदा के गर्भ से स्थित हुई।[15] वायु पुराण में भगवान वासुदेव के पिता वसुदेव का उल्लेखहै, जिसके अनुसार वसुदेव की तपस्या के परिणाम स्वरूप देवकी केगर्भ से चतुर्बाहु दिव्य रूपी भगवान ने जन्म लिया।[16]

वासुदेव और नारायण :–

वासुदेव के लिए 'नारायण' का भी उल्लेख मिलता है। 'नारायण' की 'नाडामन' शब्द उत्पत्ति मानी गयी।[17] उसका अर्थ नर या नरों के समुह के रूप में ग्रहित किया जाता है। 'नर' शब्द का व्यवहार वैदिक देवों के लिए भी हुआ है, इसलिए 'नारायण शब्द' देवों का आश्रय अर्थ अभिव्यक्त करता है। महाभारत के शांति पर्व में नारायणी खण्ड की कथा 'नारायण' से सम्बद्ध है। नारद को परम पुरूष वासुदेव ने वासुदेव धर्म की दीक्षा दी थी। इसलिए पहले नारायण की आराधना करते थे और इसके बाद पितरों की आराधना करते थे। नारायण ही उनके माता–पिता और पितामह थे।[18] आख्यानों में नारायण को जल में

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 14 Issue 02, Feb- 2024
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

शेष–शैया पर दर्शित किया गया है, जो नारायण के दूसरे अभिप्राय को सार्थक करता है। मनु के अनुसार 'नर' का अर्थ जल भी होता है, जो नर (परमात्मा) की संतान है। वह 'नारा' जल परमात्मा का प्रथम आश्रय, है, इसलिए परमात्मा 'नारायण' कहे जाते थे[19] पुराणों में नारायण के विषय में विस्तृत सूचनाएँ मिलती है। जिसके अनुसार नारायण परमपुरूष परमात्मा है। विष्णु पुराण में कहा गया है कि 'नर' (परम पुरूष) से उत्पन्न होने के कारण जल को 'नार' कहते हैं। वह 'नार' (जल) ही उनका प्रथम अयन (आवास) है, इसलिए भगवान को नारायण कहते हैं[20] मत्स्य, वायु एवं ब्रह्म पुराणों में नारायण का विष्णु का स्वरूप माना गया है।[21] ऋग्वेद में उल्लिखित मिलता है किस्वयंम् नारायण ने समस्त जीवों को धारण किए थे[22] शतपथ ब्राह्मण के अनुसार नारायण में सभी लोक देव, वेद और प्राण प्रतिष्ठित हैं।[23]महाभारत में एक स्थल पर कहा गया है कि जब सातवें कल्प के आरम्भ में सातवीं बार ब्रह्म जी के जन्म ग्रहण का अवसर आया तब शुभ और अशुभ से अमित तेजस्वी महायोगी भगवान नारायण ने सबसे पहले अपने नाभि कमल से ब्रह्म को उत्पन्न किया।[24] ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में एक ऋषि का नाम 'नारायण' वर्णित किया गया है, जा सम्भवतः परवर्ती काल में आकर 'वासुदेव' अथवा विष्णु से सम्बन्धित किया गया। तैतिरीय आरण्यक के विवरण में 'नारायण' को उन समस्त विशेषणों से युक्त किया गया है जो उपनिषदों में उल्लिखित मिलता है।[25]पौराणिक कथाओं में भगवान नारायण को क्षीर सागर में शेषनाग की शैया पर सोये हुए प्रदर्शित किया गया है। अतः नारायण का जल से सम्बन्ध स्थापना का आख्यान पुराकालीन है। परमपुरूष परमात्मा के रूप में नारायण की प्रतिष्ठा 'वासुदेव' के पहले ऋग्वेद काल में हो चुकी थी, महाकाव्य युग में वासुदेव का गौरव बढ़ा और नारायण के साथ वासुदेव का समन्वय किया गया। इसका सुन्दर वर्णन महाभारत के वनपर्व में हुआ है। जिसका आख्यान मारकण्डेय जी युधिष्ठिर को सुनाते हैं: सृष्टि के प्रलय काल में सर्वत्र जल ही जल व्याप्त था। वहीं मारकण्डेय मुनि भी आ गये थे। उस शिशु ने जब अपना मुख खोला तब मारकण्डेय उसके मुख में चले गये, जहाँ उन्होंने अत्यन्त आश्चर्य के साथ सम्पूर्ण सृष्टि को देखा। इसके बाद उस शिशु ने मारकण्डेयऋषि को उगल दिया और फिर जल में आ गये। इसके बाद उस शिशु ने पूछा, 'आप कौन हैं?' तब उसे उत्तर दिया, 'मैंने जल को 'नारा' नाम की संज्ञा दी है, जो मेरा अयन है, इसलिए मैं नारायण हूँ।' तदन्तर मारकण्डेय जी ने युधिष्ठिर से कहा, 'आपके सम्बन्धी जनार्दन ही नारायण हैं'[26] महाभारत के नारायणी खण्ड में भी वासुदेव के नारायणीय रूप की चर्चा की गयी है। एक अन्य कथा में यह कहा गया है कि नारायण चार मूर्तियों (नर, नारायण, हरि, कृष्ण) के रूप में धर्म के आत्मज थे।[27] जो कालान्तर में आकर सत्य अहिंसा, परम ब्रह्म आदि तत्वों से सम्बद्ध के तादात्म्य का यहाँ एक ही दृष्टांत पर्याप्त होगा। अर्जुन और कृष्ण को महाभारत में नर और नारायण का रूप माना गया, जो विभिन्न स्थलों पर दृष्टिगत होता ह। नर और नारायण का यहाँ एक ही दृष्टांत पर्याप्त होगा – जनार्दन अर्जुन से कहते हैं, 'हे अजेय, तू नर है, मैं नारायण। हम दोनों (नर और नारायण) इस पृथ्वी पर समयानुसार अवतरित हुए हैं। हे पार्थ, न तुम मुझसे पृथक हो और न मैं तुमसे। हमारे बीच में कोई अन्तर नहीं।[28] स्मृतियों में भी नारायण की जगतपति के रूप में वन्दना की गयी है।[29]

वासुदेव और विष्णु :–

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 14 Issue 02, Feb- 2024
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

ऋग्वेद में विष्णु की स्तुति अनेक सूक्तों में की गयी है। उनकेविक्रम, पराक्रम और यश में समस्त जगत समाविष्ट है। इसलिए विश्वमें व्यापनशील है।[30] उनकी वन्दना में कहा गया है कि उन्होंने अपनेतीन ही पद में समस्त लोकों को माप लिया था। उनके दो पद तोदृश्य थे किन्तु तीसरा पद पूर्णतः अदृश्य, पक्षियों की उड़ान से भी परे। स्वर्ग में अनिमेष देखते हुए उनके परम पद का दर्शन किया जा सकता था, मधु के उत्स के समान उनके परमपद थे, जहाँ देवगण आनन्द लाभ करते थे।[31]उत्तर वैदिक काल के तत्कालीन समाज में विष्णु का प्रभाव और आयाम बढ़ने लगा, जो महाकाव्यकाल में आकर और अधिक बढ़ गया, जिसने उन्हें सृष्टिकर्ता और जगन्नियन्ता का पद प्रदान किया। ब्राह्मण ग्रंथों में विष्णु को सवाच्च स्थान प्रदान किया गया है। शतपथ ब्राह्मण के एक उपाख्यान से ज्ञात होता है कि देवताओं ने आपस में यह निश्चय किया कि जो देवता अपने कर्म से अन्त का पता पा लेगा वह सर्वश्रेष्ठ माना जायेगा। देवताओं में विष्णु ने सर्वप्रथम अन्त को प्राप्त कर लिया, इसके फलस्वरूप वे ही देवताओं में सर्वोच्च पद के अधिकारी हुए तथा तीन पदों के कारण प्राप्त विजय से देवताओं को उन्होंने अपरिमेय अधिकार से सम्पन्न किया। देवताओं और असुरों के बीच हुए संघर्ष में विष्णु (बामन अवतार के रूप में) जब भूमि पर लेटे तब उन्होंने धीरे–धीरे अपने शरीर का आकार बढ़ाना प्रारम्भ किया और अन्त में उन्होंने अपने आकार से सम्पूर्ण पृथ्वी को ग्रस्त कर लिया। फलतः विष्णु की अद्भुत शक्ति के कारण देवताओं को सम्पूर्ण पृथ्वी प्राप्त हो गयी। इस प्रकार तत्कालीन समाज में विष्णु की बुद्धि और शक्ति सर्वाधिक प्रभावकारी और महत्वशाली सिद्ध हुई। उपनिषदों में भी विष्णु को भी परमब्रह्मके रूप में स्वीकार करके परमपद की प्राप्ति की बात कही गई है। संसार की निर्भरता अन्न के उपर थी, इसलिए उसे विष्णु का रूप माना गया है।सूत्रग्रंथों के अनुसार जब स्त्री–पुरूष का विवाह सम्पन्न होता था तब उस संस्कार में सप्तपदी के समय कहा जाता था कि विष्णु तुम्हारे साथ रहें। इससे यह ज्ञात होता है कि विष्णु जैसे देवता की कृपा और अनुकम्पा की सभी कामना करते थे। महाकाव्यों के समय तक विष्णु परम ब्रह्म परमेश्वर का पद प्राप्त कर सर्वोच्च हो चुके थे तथा वासुदेव से उनका तादाम्य स्थापित किया जा चुका था। महाभारत के अनेक स्थलों पर नारायण और विष्णु को परमेश्वर माना गया है तथा वासुदेव भगवान के रूप में वर्णित किया गया है। युधिष्ठिर ने उनकी स्तुति करते हुए उन्हें 'विष्णु' भी कहा है। पुराणों में भी वासुदेव का तादाम्य विष्णु से किया गया है। विष्णु पुराण में वासुदेव को विष्णु का नामधारी वर्णित किया गया है। उनका विष्णु नाम इसलिए था कि समस्त जगत उन्हीं की शक्ति से व्याप्त था। पुराणों में कहा गया है कि उन्होंने अपने तीन पदों से लोकों को विजित करके इन्द्र को प्रदान कर दिया। विष्णु का तृतीय पद भास्वर था, सप्तर्षि–मण्डल के उपर ध्रुव तक विष्णु पद था। वहाँ तक पहुँचने वाले को कोई चिन्ता नहीं होती थी। लोक साधक तपस्वी ध्रुव आदि ने विष्णु पद प्राप्त करके ही अचलता प्राप्त की थी।

वासुदेव का गोविन्द, गोपाल और कृष्ण से एकीकरण :–

वासुदेव भगवान के लिए गोविन्द नाम महाभारत में अनेक स्थलों पर आया है। भगवद्गीता के अनेक श्लोकों में भगवान के लिए गोविन्द का उल्लेख हुआ है। उनका गोविन्द नाम इसलिए था कि उन्होंने पृथ्वी को (गां) जल. में पाया (विदन्ति) था। महाभारत के एक स्थल पर भगवान वासुदेव स्वयं कहते हैं, मैंने पूर्व काल में नष्ट होकर रसातल में

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 14 Issue 02, Feb- 2024
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

गयी हुई पृथ्वी को पुनः वराह रूप धारण करके प्राप्त किया था, इसलिए देवताओं ने 'गोविन्द' के नाम से मेरी स्तुति की थी। गां विदनित इति गोविन्द' अर्थात् जो पृथ्वी को प्राप्त करे उसका नाम गोविन्द है। 'गोविन्द' शब्द ऋग्वेद में गायो के पालने के अर्थ में इन्द्र के लिए प्रयुक्त हुआ है, जो कालान्तर में वासुदेव कृष्ण का पर्यायवाची बन गया। कृष्ण ने जब इन्द्र पूजन के स्थान पर गोवर्धन पर्वत–पूजन का प्रारम्भ किया था तब उन्होंने कहा था, 'हम गोपालक हैं, वनों में घूमते हुए गायों पर अपना पोषण करते ह। गो, पर्वत और वन हमारे देव है, गोपालक धोषों (आभीर बस्तियों) में निवास करते थे, इसलिए वे कभी भी सफलतापूर्वक बस सकते थे। अतः व्रज का परित्याग करके वे वृन्दावन में बस गये। कालान्तर में गोपालकों के लिए 'आभीर' (आधुनिक अहीर) शब्द भी प्रचलित हो गया। भारतीय इतिहास और साहित्य में आभीरों का समुचित विवरण मिलता है।वासुदेव के लिए कृष्ण का भी व्यावहारिक रूप में प्रयोग हुआ है। महाभारत में भगवान ने स्वयं कहा है कि, "पृथापुत्र अर्जुन, मैंकाले लोहे का विशाल फाल बनाकर इस पृथ्वी को जोतता हूँ तथा मेरे शरीर का रंग भी काला है, इसलिए मैं कृष्ण हूँ" कृष्ण नाम की दूसरी व्युत्पत्ति भी है, जिसके अनुसार कृष का अर्थ है 'सत्' और 'ण' का अर्थ है आनन्द। अतः कृष्ण सच्चिदानन्द है। पुराणों में कृष्ण के अवतार की कथा संग्रहित है, जो उनका वासुदेव से तादात्म्य स्थापित करती है। वायु पुराण में 'वासुदेव', 'गोविन्द' 'कृष्ण' आदि समानार्थक शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

संदर्भ –

1. अष्टाध्यायी, 4.3.98, वासुदेवार्जुनाभ्यां तुन्।
2. महाभाष्य, 3.2.111, जधान कंसं किल वासुदेवः 3.1.26, कंसवधमाचष्टे कंसं धातयति बलिबंधमा चष्टे बलि बंधयति।
3. वही, 6.3.5, जर्नादनस्त्वात्म चतुर्थ एव।
4. वही, 2.2.24, संकर्षण द्वितियस्य बलं कृष्णस्य वर्द्धताम, 2.2.34, प्रासादे धनपनि रामकेशवान्
5. अष्टाध्यायी, 2.4.13
6. लिस्ट अव ब्राह्मी इन्क्रिप्शन्स, सं8 669
7. वहीं, संख्या 1112
8. महाभारत, भीष्मपर्व, अध्याय 66, आदिपर्व, 218.12, द्रोणपर्व, 97.36, उद्योगपर्व,
9. गीता, 10.37, वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनंजयः। मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः।
10. भागवत पुराण, 9.9.40
11. विष्णु पुराण, 3.12
12. भागवत पुराण, 10.58.42, 11.27.5
13. गीता, 7.19, बहुना जन्ममनामन्ते ज्ञानवान्मा प्रपधते। वासुदेवः सर्वमिति स महातमा सुर्दुलभः।।
14. विष्णु पुराण, 1.2.7–12 विष्णुं ग्रसिष्णु विश्वस्य स्थितौ सर्गे तथा प्रभुम्। सर्वत्रासौ समस्तं च वसत्यत्रेचि वै मतः।।

15. विष्णु पुराण, 3.15.30, ततश्च शकलजगन्महा तरूमूलतौ भूत भविष्यदादि सकलसुरासु रम निजनमन सामप्यगोचरो ऽऽजभव प्रमुखैः प्रणक्यवनिभारहणांय प्रसादितो भगवानाधिमध्य निधनो दवकी गर्भवतताता वासुदेवः।
16. वायु पुराण, 96.193.94, देवकयां वसुदेवेन तपसा पुष्करेक्षणः। चतुर्वाहुस्तु संजज्ञे दिव्यरूपः श्रियान्वितः।
17. अष्टाध्यायी, 4.1.81,
18. महाभारत, शांति पर्व, 3.45.7, यजामि वै पितृन साधौ नारायणविधौ कृते। एव स एव भगवान माता पिता पितामहः।।
19. मनुस्मृति, 1.17, आपो नाराइति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः। अयनं यस्य ताः पूर्व तेन नारायणः स्मृतः।।
20. विष्णु पुराण, 1.4.6
21. मत्स्य पुराण, 132.4, एव नारायणो भूत्वा हरिरसौत्सनातन। वायुपुराण, 23.95, साध्यो नारायणश्चैव विष्णुरत्रि भुवनेश्वरः। ब्रह्म पुराण, 4.10.34, आदि नारायणः श्रोमान्मोहिनी रूपमादधे।
22. ऋग्वेद, 10.82.56
23. शतपथ ब्राह्मण, 13.3.4.11, सर्वात्लोकानात्मन्निधिषि सर्वेषु लोकेष्वात्मनमधा सर्वान्देवानात्मन्निधिषि सर्वेषुर्वेदेष्वात्मानमधा सर्वान्प्राणात्मन्निधिषि
24. महाभारत शांति पर्व, 349.14—18,
प्राप्त प्रज्ञाविसर्गे वै सप्तमें पदमसम्भवे।
नारायणो महायोगी शुभाशुभ विवर्जित।।
ससृजे नाभितः पूर्व ब्रह्मणममितप्रभः।
ततः स प्रादुरभवदधैवं वाकय ब्रवीत।।
25. तैतिरीय, आरण्यक, 10.11
26. महाभारत, वनपर्व, अध्याय 188—89
27. महाभारत, नारायणीय खण्ड, वामनपुराण, अध्याय 6
28. महाभारत, वन पर्व 12.46.47
29. विष्णु स्मृति, 98.98—101, नारायण। परायण। जगत परायण। नमो नमो इति।
30. ऋग्वेद, 1.54.2, यस्योरूषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्नि भुवनानि विश्वा। सायण भाष्य, वही, 1.154.1
31. ऋग्वेद, 1.155.5, 1.22.20, 1.154.5, तदस्य प्रियमांभपायो अस्यां नरोयत्न देव दवो मदन्ति। उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्या विष्णोः परम पदे मध्य उत्सः।।